फ्रांस में सड़कों पर बह निकला आक्रोश का लावा

• लता

फ्रांस ने दुनिया को "स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व" का नारा दिया। फ्रांस दुनिया भर में अपनी जनवादी परम्पराओं के लिए जाना जाने वाला देश है। लेकिन हाल ही फ्रांस में हुई नौजवानों की बग़ावत (जिसे बुर्जुआ मीडिया ने "दंगे" की संज्ञा दी) ने फ्रांस की इस छवि पर एक बदनुमा दाग़ लगा दिया। इसके कारणों की पड़ताल लम्बे समय तक चलती रहेगी। लेकिन इस घटना ने यह दिखला दिया कि असमान पूँजीवादी विकास से जो विकृतियाँ पैदा होती हैं वह कभी भी पूँजीवाद को 'स्मूदली' नहीं चलने देतीं। यह बात अर्थतंत्र की अराजकता में ही नहीं दिखती बल्कि नस्ली हिंसा, उत्पीड़न और उसके ख़िलाफ़ खड़े होने वाले प्रतिरोध जैसे सामाजिक मुद्दों में भी प्रतिबिम्बित होती है।

वर्षों से बेकारी, अभाव और नस्ली अपमान झेलती फ्रांस की अरब-अफ्रीकी मूल की आबादी का आक्रोश सड़कों पर लावा बनकर बह निकला। जिस घटना से इस बग़ावत की शुरुआत हुई वह तो निमित्त मात्र थी। राजधानी पेरिस के एक उपनगर में अरब-अफ्रीकी मूल के दो किशोर पुलिस की जाँच से बचने के लिए एक बिजली घर में छिप गये थे जहाँ करेण्ट लगने से उनकी मौत हो गयी। स्थानीय युवा और नागरिक इस घटना के विरोध में सड़कों पर उतर आये। इसके बाद फ्रांस के गृहमंत्री निकोलस सरकोज़ी के बयान से इस घटना ने तूल पकड़ लिया कि स्थानीय उपनगर में रहने वाले अरब-अफ्रीकी मूल के लोग समाज के कचरे हैं। एक दिन बाद एक मस्जिद बम विस्फोट की घटना से नौजवानों का गुस्सा बेकाबू हो गया। यह बग़ावत शुरू तो अरब-अफ्रीकी मूल के नौजवानों ने की लेकिन जल्दी ही उनसे फ्रांस की मूल आबादी के बेरोज़गार नौजवान भी जुड़ने लगे। अपने गुस्से की आग में नौजवानों में दो हज़ार से अधिक कारों, तमाम स्कूली इमारतों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों और सत्ता के तमाम केन्द्रों को जला दिया। साथ ही नौजवानों ने सड़कों पर पुलिस के साथ छापामार ढंग से ज़बर्दस्त मुठभेड़ें कीं। एक घटना के माध्यम से जो आक्रोश उबल पड़ा था उसे हज़ारों की तादाद में मौजूद पुलिसकर्मी भी नहीं नियंत्रित कर पाये। तोड़-फोड़ और आगजनी की बढ़ती घटनाओं के मद्देनज़र सरकार ने अपने सारे हथियार आजमा लिये। कर्फ्यू लगाया गया और आपातकाल की घोषणा की दी गई। साथ ही पुलिस को तलाशी और गिरफ्तारी का बेलगाम अधिकार दे दिया गया। लेकिन जल्दी फ्रांसीसी सरकार को यह बात समझ में आ गई कि इससे बात और बिगड़ सकती है। लिहाज़ा इसमें से एक भी कदम पर कठोरता से अमल नहीं किया गया। यह बात फ्रांस सरकार में बैठे घाघ चिन्तकों को समझ में आ रही थी कि यह स्वतःस्फूर्त रूप से फूटा गुस्सा है जिसके पास कोई दिशा नहीं है। इसको अगर उदारता से सम्भाला जाय तो मामला जल्दी ही खत्म किया जा सकता है। जबकि सख्ती करने से इस संघर्ष के और प्रचण्ड होने और कालान्तर में कोई दिशा अर्जित कर लेने के ख़तरे थे। जल्दी ही इस बग़ावत पर काबू पा लिया गया। लेकिन यह बग़ावत पश्चिमी समाज की जनता और सभी को ही सोचने के कई मुद्दे दे गई।

नौजवानों के इस स्वतःस्फूर्त विद्रोह ने पश्चिमी देशों की गुलाबी तस्वीर पर एक काला धब्बा लगा दिया। फ्रांस में अरब-अफ्रीकी मूल की इस आबादी का इतिहास द्वितीय विश्व युद्ध से शुरू हुआ। इन वर्षों में फ्रांसीसी अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास हो रहा था। सस्ते श्रम की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए सरकार ने अरब-अफ्रीका और पश्चिमी अफ्रीका के अपने भूतपूर्व उपनिवेशों के लोगों को लाकर उपनगरों में बसाया था। उस समय उन्हें न केवल रोज़गार की गारण्टी दी गई बल्कि उन्हें आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य नागरिक सुविधाएँ भी मुहैया कराई गईं थीं। उनके रहने के लिए बहुमंज़िली इमारतों का निर्माण कराया गया। अल्जीरिया, ट्यूनीशिया, मोरक्को, गिनी बिसाऊ, आइवरी कोस्ट जैसे देशों से आई इस ग़रीब आबादी के लिए रोज़गार की गारण्टी और ये सुविधाएँ उनके अपने देश की परिस्थितियों की तुलना में नेमतों के समान थीं। लेकिन उनके लिए ये परिस्थितियाँ डेढ़-दो दशक बाद ही बदलने लगीं।

1973 के तेल संकट और उसके फलस्वरूप विश्व-पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के संकटों का असर फ्रांसीसी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा। बड़ी तादाद में फ्रांस के कारखानों में छँटनी और तालाबन्दी का सिलसिला शुरू हो गया। रोज़गार की अनिश्चितता पैदा हुई। अरब-अफ्रीकी मूल की आबादी को दी गई तमाम आवासीय और नागरिक सुविधाओं की हकीकत सामने आने लगीं। इन बहुमंज़िली इमारतों के निर्माण में दोयम दर्ज़े की सामग्री इस्तेमाल की गई थी। धीरे-धीरे कम होता रोज़गार नागरिक सुविधाओं की बदहाली और रंगभेद ने जिस प्रकार की नारकीय जीवन स्थितियाँ पैदा कीं उससे इस अप्रवासी आबादी की आँखें खुल गईं। उन्हें अहसास होने लगा कि जिन सुविधाओं को वे नेमत समझते थे, वे मात्र इस देश की अर्थव्यवस्था की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए थीं। इस दौरान इस आबादी की नयी पीढ़ी युवा हो चुकी थी। यह पीढ़ी पूरी तरह फ्रांस में जन्मी, पली और बढ़ी थी। यह युवा पीढ़ी अपने आपको फ्रांस का नागरिक मानती है। अपने अधिकार वह अन्य किसी भी श्वेत युवा के समान मानती है। लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था के गहराते संकट और अश्वेत फ्रांसीसी युवाओं के बीच बढ़ती बेरोज़गारी ने नये सिरे से उसे नस्लवादी भेदभाव की ज़मीन भी तैयार कर दी। इसका प्रभाव इतना व्यापक है कि सरकारी मशीनरी और बुर्जुआ राजनीति भी इससे अछूती नहीं है।

कुछ तथ्यों की जाँच-पड़ताल से यह पता लगाया जा सकता है कि आज फ्रांस में यह अरब-अफ्रीकी मूल की आबादी किन जीवन परिस्थितियों से होकर गुज़र रही है। इनकी आबादी फ्रांस में लगभग 60 लाख के लगभग है। इनमें से 30 लाख लोग बेरोज़गार हैं। नौजवानों में बेरोज़गारी 50 प्रतिशत से भी अधिक पहुँच चुकी है। इतना ही नहीं यह आबादी कदम-कदम पर चाहे वह सरकारी दफ्तर हो, पुलिस महकमा हो, या सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्र

(पेज 48 पर जारी)

कार्यकर्ता इस बात से अच्छी तरह वाकिफ़ थे। इसके बाद हस्ताक्षर अभियान की प्रतिलिपियाँ इलाके के निगम पार्षद, मुख्यमंत्री, दिल्ली, शहरी विकास मंत्री, दिल्ली, सांसद (पूर्वी दिल्ली), और उपराज्यपाल, दिल्ली और दिल्ली नगर निगम को दी गईं। 25 अक्टूबर को नौभास के नेतृत्व में मुकुन्द विहार के निवासियों का एक प्रतिनिधि मण्डल निगम पार्षद जगदीश प्रधान और सांसद सन्दीप दीक्षित से मिला। भारी जनदबाव से मजबूर होकर सन्दीप दीक्षित को यह वायदा करना पड़ा कि दीपावली के बाद सड़क निर्माण के काम की प्रक्रिया शुरू कर दी जाएगी। दीपावली के बाद नौभास का प्रतिनिधि मण्डल फिर से निगम पार्षद से मिला। इसके बाद यह बात इन "जनप्रतिनिधियों" के समझ में आ गई कि अब मुकुन्द विहार की जनता को बहुत समय तक बहका पाना मुश्किल है। नतीजतन, इस मुलाकात के बाद पखवारा बीतने से पहले ही सड़क निर्माण आन्दोलन को अपनी पहली ठोस विजय मिली, जब सड़क निर्माण की प्रक्रिया मापन और मूल्यांकन के साथ शुरू हो गई।

इसके बाद नौभास ने फिर एक जनसभा का आयोजन किया जिसमें लोगों को नौभास कार्यकर्ताओं ने यह याद दिलाया कि अभी संघर्ष खत्म नहीं हुआ बल्कि यह महज पहली जीत है। हमें यह संघर्ष तब तक चलाना होगा जब तक कि हम मुकुन्द विहार की सारी सड़कें नहीं बनवा लेते।

इसके बाद सड़क निर्माण के काम को एक वैकल्पिक सत्ता की निगरानी में करवाने के मकसद से नौभास के नेतृत्व में मुकुन्द विहार के दस लोगों की एक निगरानी कमेटी बनाई गई जो यह रिपोर्ट लिखे जाने तक नियमित तौर पर कार्य प्रगति का जायज़ा लेती रहती है। और यह निगरानी कमेटी कुछ टुच्चे छुटभैया नेताओं और लुटे-पिटे चौधरियों की तोड़-फोड़ की कोशिशों और हेकड़ी चलाने के प्रयासों को भी नाकाम करती रहती है और मुकुन्द विहार की जनता में इन लोगों के भय को समाप्त करने का काम भी करती है।

मेरठ में पुलिस के ऑपरेशन मजनूँ के ख़िलाफ़ दिशा छात्र संगठन का व्यापक हस्ताक्षर अभियान

ज्ञात हो कि मेरठ की पुलिस ने छेड़खानी रोकने के नाम पर गाँधी पार्क नामक एक सार्वजनिक स्थल पर बैठे लड़के-लड़कियों को बेइज़्ज़त करना और बुरी तरह मारना-पीटना शुरू कर दिया। इस घिनौनी हरकत से पूरे देश के युवाओं में गुस्से और नफ़रत की लहर दौड़ गयी। इस घटना में दोषी पुलिसकर्मियों को सज़ा दिलाने की माँग करते हुए और यह माँग करते हुए कि आगे से इस किस्म का कोई भी अभियान न चलाया जाय, दिशा छात्र संगठन ने दिल्ली विश्वविद्यालय में 20 से 23 दिसम्बर तक सघन हस्ताक्षर अभियान चलाया। इस हस्ताक्षर अभियान को छात्र-छात्राओं का शानदार समर्थन प्राप्त हुआ।

कई छात्रों ने यह भी कहा कि अगर मेरठ चलना पड़े तो वे चलने को भी तैयार हैं। तीन दिन तक हस्ताक्षर अभियान चलने के बाद करीब 1300 हस्ताक्षर जुटाकर हस्ताक्षर अभियान की प्रतिलिपियाँ मुख्यमंत्री (उ.प्र.), आई. जी. (मेरठ ज़ोन), डी.जी.पी. (मेरठ), राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग को प्रेषित कीं।

फ्रांस में सड़कों पर...

(पेज 32 से जारी)

हों, नस्लवादी, रंगभेदवादी भेदभाव और अपमान सहती है। 11 सितम्बर को वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर पर हुए हमले के बाद इस आबादी की स्थितियाँ और बदतर हो गईं। पहले उन्हें रंगभेद और नस्लभेदवादी नज़रिये से देखा जाता था। अब वे उनकी नज़रों में आतंकवादी भी थे। हर अप्रवासी को आतंकवादी होने के शक में तरह-तरह की अपमानजनक जाँच-पड़तालों से होकर गुज़रना पड़ता है। ऐसी स्थितियों को झेलते युवा ज़्यादा दिन ख़ामोश नहीं रह सकते थे। उनके अन्दर जमा हो रहा आक्रोश जल्दी ही अपने लिए मार्ग तलाश लेता। दो किशोरों की बिजली घर दुर्घटना में हुई मौत ने उसे रास्ता दिया। बेरोज़गारी और अपमान, कह सकते हैं कि एक तो करेला और वह भी नीम चढ़ा। इसके विरोध में तीन सप्ताह तक चली आगजनी और तोड़-फोड़ अभी तो शुरुआत मात्र है।

फ्रांस पूँजीवादी विश्व के चमकते सितारों में से एक है। लेकिन इस पूँजीवादी स्वर्ग में हुई इस घटना ने सारे पर्दे गिरा दिये हैं। यह सच्चाई इसी पूँजीवादी स्वर्ग पर लागू नहीं होती बल्कि अन्य सभी पूँजीवादी स्वर्ग पर लागू होती है। आपको याद होगा कि 1992 में अमेरिका में एक अश्वेत युवक रोडनी किंग की पुलिस द्वारा बर्बर पिटाई के बाद भी अश्वेत युवकों का गुस्सा हिंसक वारदातों के रूप में फूट पड़ा था।

फ्रांस की पूँजीवादी सरकार पर ही नहीं बल्कि दुनिया भर की पूँजीवादी सत्ताओं पर ये तीन सप्ताह बहुत भारी गुज़रे हैं। दूसरों से चाहे कितना छिपायें लेकिन इस कुरूप सच्चाई से वे बहुत भली तरह वाकिफ़ हैं कि हर जगह इस तरह की आबादी है। और उनकी जीवन स्थितियाँ बद से बदतर हो रही हैं। फ्रांस के युवाओं की यह स्वतःस्फूर्त बग़ावत फ़िलहाल शान्त हो गई है। लेकिन यह दुनिया की अन्य जगहों के नौजवानों को, जो इस तरह की बेरोज़गारी, अभाव और अपमान झेल रहे हैं, उन्हें अपनी आवाज़ बुलन्द करने की प्रेरणा देगा। फ्रांसीसी हुक्मरानों की यह कोशिश रहेगी कि वे समाज में पड़ चुकी दरारों को और चौड़ा करते जाएँ। लेकिन उनकी ये कोशिशें हमेशा कामयाब होती रहेंगी, यह मानना इतिहास की गति को नज़रअन्दाज़ करना होगा। पूँजीवाद रूपी बुड्ढा जीने की ख़्वाहिश का इस कदर शिकार है कि जैसे तैसे नस्ल और धर्म, राष्ट्रीयता और भाषा, क्षेत्र और जाति के मतभेद जनता में सुलगा कर जिये जाने की कोशिश किये जा रहा है। लेकिन बूढ़ा चाहे जो भी यत्न करे मौत के करीब ही होता जाता है। शोषण, उत्पीड़न करने वाली यह व्यवस्था खोखली होती जा रही है। इस पर विद्रोह-रूपी दरारों की संख्या बढ़ती जा रही है।

मेहनतकश अवाम के संघर्षों के केन्द्र तो फिलहाल एशियाई, लातिन अमेरिकी और अफ्रीकी देश ही बनेंगे। लेकिन इनसे पश्चिमी देशों के मेहनतकश अछूते रहेंगे, इसकी कल्पना कर पाना मुश्किल है। फ्रांस की राजधानी पेरिस जहाँ मज़दूरों ने अपनी पहली सरकार बनाई थी, वहाँ मेहनतकश अवाम फिर से संघर्ष कर अपने द्वारा फहराये गये स्वतंत्रता-समानता-भ्रातृत्व के परचम को ऊँचा उठाएगा।